Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 6 | ISSUE : 1 | JANUARY 2020

महाकवि भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम्' में शाश्वत जीवन मूल्य

डॉ. श्याम लाल [1]

[1] सह–आचार्य, चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या, महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

ABSTRACT:

शाश्वत जो स्थायी, सतत्, अनन्त होता है। मूल्य से तात्पर्य कीमत से नहीं है अपितु मानवीय आचरण तथा व्यवहारों का एक मापदण्ड या मानक से है। ये मानवीय अनुभवों के साथ ही विविध सांस्कृतिक, सामाजिक परम्पराओं, संस्कारों पर भी अवलम्बित होते हैं। हमारे आत्मवाद, ईश्वरवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, परलोकवाद और दार्शनिक–धार्मिक सिद्धान्तों का भी मूल्यों के नियमन एवं विकास में अहम भूमिका है। अर्थात् हमारी नैसर्गिक प्रवृत्तियों एवं अभिलाषाओं में मानव की यथार्थ प्रकृति मानवता के सकारात्मक समावेश के निमित्त हम जिन मानवीय मूल्यों का निर्वहन करते आ रहे हैं, उसे हम शाश्वत मूल्य कहते हैं। ये शाश्वत मूल्य ही हैं जो हमारे अन्दर मानवता का संचार कर सदैव हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं और हमें सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होने देते।

KEYWORDS:

अवलम्बित, लोकाराधन, विनयशीलता, लोकापवाद, ब्रह्मचारी, करुणाप्लावित, पराकाष्ठा, पुण्यकर्म, कृतज्ञता।

हमें गर्व है कि हमारा भारतदेश सदियों से अपनी गौरवशाली परम्पराओं व सनातन सांकृतिक विरासत से महान् है। यहां की पुण्यभूमि पर समय–समय पर सत्य को पुनः स्थापित करने के लिए स्वयं ब्रह्मा को अवतार लेना पड़ा। जब भी समाज हमारे अग्रजनों, आप्त पुरुषों के विचारों को अवहेलना कर अधर्म व अनीति की ओर प्रवृत्त हुआ तब–तब दैवीय शक्ति का आविर्भाव हुआ और धर्म व नीति पुनः स्थापित हुई है –

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनाथाय संभवामि युगे–युगे।।[1]

अर्थात् हे अर्जुन ! जब भी धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं शरीर धारण करता हूं। सदाचारियों की रक्षा के लिए, दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में आता हूँ।

अतः विश्व में कोई ऐसा देश है जहां मानव जाति की क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का विकास हुआ है, जहां आध्यात्मिकता तथा आत्मान्वेषण का विकास हुआ है तो वह केवल भारत ही है। यही वह देश है, जिसमें रहने वाले सभी प्राणियों के कल्याण की कामना की गई है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत्।।

इसी भारत की पुण्यभूमि पर अवतरित महाकवि भवभूति ने अपने नाटक 'उत्तररामचरितम्' में शाश्वत मूल्यों की उपस्थापना सत्य, अहिंसा, सम्मान, विनम्रता, श्रद्धा, शिष्टता और कृतज्ञता के रूप में की है जो इस प्रकार द्रष्टव्य है –

1. सत्य –

सत्य ही शाश्वत है, सत्य परेशान हो सकता है परन्तु पराजित नहीं। अन्ततोगत्वा सत्य की ही विजय होती है। 'सत्यमेव जयते' की दृढ़ता से अनुभूति 'उत्तररामचरितम्' में देखी जा सकती है। 'उत्तररामचरितम्' में राम का सत्य लोकापवाद के असत्य के बादलों से घिरा हुआ है जो उनकी व्यावहारिक सत्यता को विचलित कर रहा है, सभी पात्र अस्तित्व के द्वन्द्व में फंसे हैं और राम असत्य (लोकापदवाद) से आहत अकल्पनीय मनोव्यथा का सामना करते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसा प्रतीत होता है कि व्यावहारिक सत्य के सन्दर्भ में उनका चरित्र जनमानस में कलंकित हो रहा है। वासन्ती राम को यथार्थ के आधार पर प्रश्न खड़े करती है कि तुम वही राम हो जो सीता के लिए कहा करते थे कि तुम ही मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरी आंखों में चांदनी हो, तुम शरीर पर अमृत हो आदि सैंकड़ों वचनों से भोली–भाली सीता को अनुनय करके उन्हीं को अथवा बस ! इसके आगे कहने से क्या लाभ?

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदीं नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमितः परेण।।[2]

वासन्ती यहीं नहीं रूकती वह आगे फिर कहती है कि हे निष्ठुर ! निश्चय ही तुम्हें यश प्रिय है, किन्तु इससे बढ़कर अयश और क्या है?

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं।
किमयशो ननु घोरमतः परम्।।[3]

राम भी सीता के निर्वासन से व्यथित है यह व्यावहारिक रूप से सत्य है किन्तु वास्तविक सत्य तो यह है कि न सीता ने राम का परित्याग किया था न राम ने सीता का। सीता राम के बारे में कहती है कि हृदय ही पारस्परिक प्रेम को जानता है। तुम्हारा हृदय मेरे प्रेम को और मेरा हृदय आपके प्रेम को जानता है।

राम द्वारा सीता का निर्वासन पूर्णतया सत्य नहीं है अपितु सत्यता तो यह है कि राम के निर्वासन के उपरान्त भी सीता निर्वासित नहीं हुई। दोनों का पारस्परिक प्रेम व विश्वास ही शाश्वत सत्य है यही शाश्वत मूल्य को प्रतिपादित करता है।

2. अहिंसा –

मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्राणी को हानि न पहुंचाना। 'अहिंसा परमोधर्मः' कहा गया है। सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी एक आख्यान का वर्णन करते हैं। उद्धव जी ने पूछा – ''भगवान! किसी को कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा है?''

भगवान ने कहा – ''नहीं, यह बात नहीं है। कभी–कभी कष्ट न पहुंचाना भी हिंसा हो जाती है। कभी कष्ट पहुंचाने से भी अहिंसा होती है। कोई आततायी है, किसी की बहन–बेटी पर बलात्कार कर रहा है, हम सोचें कि इसको रोकें तो कष्ट होगा, तो हमारा यह विचार हिंसायुक्त हुआ। हिंसा–अहिंसा का विशेष सम्बन्ध भाव से है अहिंसा न मारने से ही नहीं होती। अर्जुन को भी यही भ्रम था कि मैं राज्य के लिए अपने सम्बन्धियों की हिंसा क्यों करूं? इससे तो भीख मांगकर खाना अच्छा। तब मैंने उसे हिंसा–अहिंसा का मर्म समझाया। धर्म की रक्षा करते हुए दूसरों को मनसा–वाचा–कर्मणा कष्ट न देना, यही अहिंसा है। इस धर्म का पालन मनुष्य मात्र कर सकते हैं।[4]

'उत्तररामचरितम्' में भवभूति के सभी पात्र करुणा और स्नेहासक्ति हृदय वाले हैं। वस्तुतः करुणा और स्नेह अहिंसा की ही वृत्तियां है। एक आदर्श राजा के रूप में लोकाराधन के निमित्त सीता का निर्वासन करना एक ओर तो राजधर्म का निर्वहन है परन्तु दूसरी ओर पत्नी का निर्वासन गृहस्थ की दृष्टि से पति द्वारा पत्नी के प्रति ऐसा कृत्य अहिंसा जैसे शाश्वत मूल्यों का ह्रास है, परन्तु मन से राम इस निर्णय से अत्यन्त व्यथित हैं, सभी परिजन व्यथित हैं इन सबके आड़े आ रहा राजधर्म उन्हें ऐसा करने पर विवश कर रहा है उन्हें दुःख है कि भयंकर जंगल जिसमें हिंसक जानवर निवास करते हैं वहां सीता को छोड़ने पर वे जानवर सीता पर आक्रमण कर उनका विनाश कर सकते हैं, ऐसा मन ही मन सोचते हुए विह्वल हो जाते हैं और परित्यक्ता सीता का स्मरण करते हुए कहते हैं–

हा हा देवि! स्फुटतिं हृदयं ध्वंसते देहबन्धः

शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः।।[5]

अर्थात् हा हा देवि सीते! तुम्हारे वियोग के कारण अब मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूं कि मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, शरीर के अवयवों के जोड़ टूट से रहे हैं, सारा संसार मुझे सूना प्रतीत हो रहा है। मैं शरीर के भीतर ही भीतर अविश्रान्त ज्वालाओं से जल रहा हूँ, खिन्न एवं प्रिया से रहित होने के कारण अकेली यह मेरी अन्तरात्मा मानों प्रगाढ़ अन्धकार में डूबी जा रही है, मूर्च्छा मुझे चारों ओर से घेर रही है, अर्थात् जब मैं मूर्च्छित हुआ ही जाता हू मैं ऐसा मन्द भाग्य हूँ कि मुझसे कुछ करते ही नहीं बनता, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?

राम के यह भाव सीता के प्रति करुणाप्लावित है। राम का वियोगजन्य शोक असहनीय हो गया है, अब और दुःख सहन करने की क्षमता शेष नहीं रही। इस प्रकार भवभूति करुणा के माध्यम से अहिंसा रूपी शाश्वत मूल्य उपस्थापित करते हैं।

3. सम्मान भाव –

भारतीय संस्कृति में सम्मान भाव की परम्परा रही है। वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, ऋषि मुनियों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार व आदरसूचक सम्बोधन करना सनातन संस्कृति की परम्परा रही है। बड़ों के प्रति सम्मानभाव प्रकट करना एक शाश्वत मूल्य है। भवभूति ने तो 'उत्तररामचरितम्' में कहा है कि गुणीजन सदैव पूजनीय है उनकी आयु व लिंग को नहीं देखना चाहिए गुण ही सम्मान का आधार हो।

अग्नि परीक्षा के सम्बन्ध में भगवती अरुन्धती का यह कथनसीता के सम्मान में द्रष्टव्य है–

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,

विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वपि तु मम भक्ति दृढ़यति।

शिशुत्वं स्त्रेणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।।[6]

अर्थात् मुझ अरुन्धती को तुम चाहे पुत्री रूपा बालिका हो और चाहे मेरी शिष्या, जो कुछ भी तुम हो, वह सम्बन्ध (तुम में) वैसा ही बना रहे (किन्तु) पवित्रता को पराकाष्ठा तो तुम में मेरी भक्ति (और श्रद्धा) को दृढ़ बना रही है। (तुम में) शिशुत्व हो या स्त्रीत्व तुम वस्तुतः लोकों की पूजनीया हो (क्योंकि) गुणीजनों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, अर्थात् गुणों का ही सर्वत्र आदर होता है।

नायक व नायिका के लिए नाटकों में सम्बोधन को भी भवभूति ने आर्यपुत्र व आर्या से सम्बोधित किया है। जो कि आदरसूचक है।

4. विनम्रता –

विनयशीलता मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। कहा गया है 'विद्या विनयेन शोभते' ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान व घमण्ड से रहित होकर यदि विनम्र रहता है तो उसका व्यक्तित्व महान हो जाता है। विनम्रता से वह सब प्राप्त किया जा सकता है जो अहंकार से नहीं। रामायण में राम और रावण के चरित्र को देखकर यही कहा गया है कि **''रामदिवद्वर्तितव्यं न तु रावणादिवद्''**। सीता स्वयंवर के समय भगवान् परशुराम के क्रोधित होने पर राम ने विनम्रता से ही उन्हें प्रसन्न किया था। अतः विनम्रता भी एक शाश्वत जीवन मूल्य है।

भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में लव की राम से भेंट के समय लव की विनम्रता द्रष्टव्य है –

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निवृतिघनः,

तदौद्धत्यं कापि व्रजति विनयः प्रद्दयति माम्।

झटित्यस्मिन्दृष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा

महार्धस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।[7]

लव राम को देखकर मन ही मन सोचता है कि वैरभाव शान्त हो गया, आनन्द धन प्रेमरस फैल रहा है, वह पूर्वानुभूत धृष्टता कहीं विलुप्त हो रही है और विनयशीलता मुझे विनम्र बना रही है।

इस प्रकार जहां राम के प्रति लव के मन में क्रोध था वह शान्त हो गया यकायक विनम्रता छा गयी। इस प्रकार भवभूति का विनम्रता शाश्वत जीवन मूल्य पुरुष को पुरुष से महापुरुष बना देता है और श्रद्धापूर्ण उदात्त हृदय म परिवर्तित कर देता है। इसी प्रकार गुरु वशिष्ठ के आगमन पर उनके द्वारा आशीर्वचन कहने के प्रसङ्ग में विनयशीलता के प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

5. श्रद्धा –

शाश्वत जीवन मूल्यों में श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद्भागवद् में कहा गया है ''श्रद्धावॉल्लभतेज्ञानम्'' जिनके प्रति मन मे सम्मान होता है उनके प्रति श्रद्धाभाव स्वतः ही स्फूर्त रहता है। 'उत्तररामचरितम्' में अतिथियों के आगमन को लेकर जो स्वागत–सत्कार की तैयारियां है वह अतिथियों के प्रति श्रद्धा प्रकट करती है। भारतीय संस्कृति में अतिथि को देवतुल्य माना गया है ''अतिथि देवो भवः''। 'उत्तररामचरितम्' के द्वितीय अंक में जब तापसी आत्रेयी दण्डकारण्य में अगस्त्य आदि ऋषियों से वेदान्त विद्या पढ़ने आती है तब वन देवता फल और फूलों से भरे पल्लव सहित दूर से ही तापसी का स्वागत करती है तब तापसी कहती है अरे वन देवता, फल–पुष्पों से भरे पल्लव अर्ध्य के द्वारा दूर से ही मेरा सत्कार कर ही है – तब वनदेवता अर्ध्य देते हुए कहते हैं कि – यह वन आपके लिए स्वेच्छापूर्वक सर्वथा उपभोग योग्य है, यह मेरे लिए शुभ दिन है, क्योंकि सज्जनों का सज्जनों से मिलन किसी भी प्रकार पुण्यकर्म से ही होता है, वृक्षों की छाया, जल और जो कुछ भो तपस्याओं के योग्य भोजन (होता है) फल अथवा मूल (कन्द) वह भी यहां पर आपके लिए पराधीन नहीं (है) अर्थात सुलभ है – आप इन सबका स्वेच्छानुसार उपभोग कर सकती है।

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः,

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्ये न भवति।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं,

फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः।।[8]

इस प्रकार स्वागत–सत्कार निस्सन्देह श्रद्धाभाव से किया जा सकता है। ऐसे अनेक प्रसङ्ग 'उत्तररामचरितम्' में दिखाई देते हैं।

6. शिष्टता –

शिष्टता वह शाश्वत जीवन मूल्य है जो बड़ों के प्रति आदर करना सीखाता है और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। जीवन में शिष्टता है तो यही एक सद्गुण मनुष्य में मनुष्यता का आधान करता है। भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अङ्क में ऋषि अष्टावक्र के माध्यम से सीता के लिए गुरु वशिष्ठ द्वारा प्रेषित आशीर्वाद युक्त सन्देश सुनाते हैं तो सहसा राम के श्रीमुख से उनके प्रति अनुग्रहीत हुआ कहने के साथ ऋषियों के शब्दों और भावों के प्रति जो शिष्टवाणी में राम द्वारा कहा गया वह द्रष्टव्य है–

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।

ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।[9]

अर्थात् साधारण संसारी सज्जनों की वाणी तो पदार्थ या वस्तु का अनुसरण करती है परन्तु प्राचीन महर्षियों की वाणी का अर्थ स्वयं अनुसरण करता है।

इस प्रकार राम का महर्षि वशिष्ट के आशीर्वाद युक्त सन्देश (सीता वीर सन्तान वाली हो) में पूर्ण आस्था प्रकट करते हुए अनग्रहीत युक्त वचनों से शिष्टवाणी में विश्वास जताया है। इस प्रकार पंचम अंक में लव और चन्द्र केतु के संवाद में शिष्टतायुक्त वचनों से संवाद देखा जा सकता है।[10]

7. कृतज्ञता –

किसी के प्रति किये गये उपकार के प्रति उपकार की भावना कृतज्ञता है। यह उपकृत व्यक्ति के हृदय में उपकारकर्ता के प्रति अगाध श्रद्धा है। भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' में इस शाश्वत जीवन मूल्य के दर्शन कई स्थानों पर होते हैं। द्वितीय अंक में लोकापवाद के प्रसङ्ग में ब्राह्मण बालक की मृत्यु होने पर राजा राम के दरबार में लोक गुहार में यह आरोप लगाया कि राज्य में नियम विरुद्ध एक शूद्र तपस्या कर रहा है जिसके चलते उनके पुत्र की मृत्यु हुई है, जबकि शम्बूक (शूद्र) एक तपस्वी था किन्तु लोकानुरंजन (शूद्र को तपस्या की अनुमति नहीं थी) को शान्त करने के लिए राम को यह दुष्कृत्य करना पड़ा किन्तु राम ने शम्बूक की कठोर तपस्या के लिए उसे दिव्यलोक (वैराज्यलोक) दे कर सद्गति प्रदान की। इससे शम्बूक कृतज्ञ हुआ कि यमराज से भी अभयदान देकर आपके दण्डधारण करने पर वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया और मेरी भी समृद्धि हुई। यह शम्बूक शिर से आपके चरणों को नमस्कार करता है। सत्पुरुषों के सम्पर्क से होने वाले मरण भी तार देते हैं अर्थात मनुष्य का उद्धार ही होता है।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे,

संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।

शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते,

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।[11]

लोकाराधनव्रती एवं मर्यादापालक राम को विवश होकर सीता परित्याग व शम्बूक वध जैसे कड़वे घूंट पीने पड़े। लोकमर्यादा की रक्षा के लिए यह सब करना पड़ा, तत्कालीन परिस्थितियों में शूद्र का तप करना मर्यादा विरुद्ध था। इस घटना को

लेकर भगवान राम की कुछ लोगों द्वारा आलोचना की गई है परन्तु भवभूति ने लोकाराधन के लिए ऐसा करना बताया और शम्बूक का कल्याण होने से शम्बूक कृतज्ञ हुए।

इस प्रकार भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में सत्य, अहिंसा, सम्मानभाव, श्रद्धा, शिष्टता, कृतज्ञता आदि शाश्वत जीवन मूल्यों का उपस्थापन कर प्राचीन भारतीय चिन्तर परम्परा को सुदृढ़ करते हुए मानवीय गुणों में अभिवृद्धि की है। मानवतावाद को परिपुष्ट करते नायक राम को कठोर निर्णय लेने पड़े, लेकिन शाश्वत जीवन मूल्यों की रक्षा की। यह मानवीय दृष्टिकोण भवभूति को कवित्व के शिखर तक पहुंचाता है।

REFERENCES

1. गीता अध्याय 4, श्लोक 7, 8
2. उत्तररामचरितम्–3/26
3. उत्तररामचरितम्–3/27
4. शाश्वत जीवनमूल्य– हनुमान सिंह राठौड़, पृ.सं. 41
5. उत्तररामचरितम्–3/38
6. उत्तररामचरितम्–4/11
7. उत्तररामचरितम्–6/11
8. उत्तररामचरितम्–2/1
9. उत्तररामचरितम्–1/10
10. उत्तररामचरितम्–5/10
11. उत्तररामचरितम्–2/11